मालवी लोकगीतों का स्वरूप

* डॉ. प्रकाश कड़ोतिया

मालवांचल में निवास करने वाला प्रत्येक व्यक्ति अपनी संस्कृति एवं लोकरंजन के द्वारा मालवी लोक संगीत से जुड़ा हुआ है। मालवांचल में शहरी एवं अधिकतर गाँवों में मालवी लोक संगीत का बाहुल्य है। दिन भर काम करने के बाद जब लोग अपने घर लौटते हैं भोजन के पश्चात् रात्रि को वह चौपाल पर बैठकर लोक गायन–वादन–नृत्य आदि के द्वारा ही मनोरंजन करते हैं। इस अंचल में निर्गुणी भजन, सगुणी भजन, त्यौहार–गीत, अन्य उत्सव–गीत गाये बजाये जाते हैं। इसके साथ ही नृत्य विधा के द्वारा भी मनोरंजन किया जाता है। यह सब लोक संगीत के रूप में ही समाहित है।

लोक संगीत – लोक संगीत जन–जीवन की उल्लासमय अभिव्यक्ति है। पैरी के कथनानुसार "लोक–संगीत वस्तुतः लोक गीत ही है, क्योंकि दोनों एक दूसरे के पूरक और प्रेरक हैं।" आदिकाल में जब कि सामाजिक चेतना विकास की ओर गतिशील थी, उस समय सहज ही ऐसी कविता का जन्म हुआ जिसका जीवन से सीधा संपर्क था। सामाजिक तत्व को व्यक्त करने वाले लोकगीत मनुष्य के निष्कर्म को दूर करने एवं श्रम–परिहार के हेतु सदैव ही मूल्यवान सिद्ध हुये हैं। इन गीतों में सुखी जीवन और अच्छी उपज की कल्याणमयी भावनाएँ हैं। लोकगीतों का यह क्रम उस समय की अटूट लहर के सहारे लोक संगीत के परंपरागत स्वरों से बंधा हुआ आगे बढ़ता गया। आज भी वही क्रम चल रहा है और आगे भी मानव की सहज चेतना की बांह थामें चलता रहेगा।

मालवांचल के हमेंशा से लहराते हुए खेत, सरिता का मीठा संगीत, आम्रकुंजों की सघनता, फागुन के पलाश की अनुरागमयी ललाई और वैशाख में गुलमोहर और अमलतास की ललक और खलिहानों तथा कुंओं में मादकता का प्रसार करने वाले प्राकृतिक उपकरण अपने आप में भरे पूरे हैं। ऋतुएं आती हैं और अपने साथ गीतों की क्षिप्रा, चम्बल, बेतवा और काली सिन्ध बहाती लाती हैं। मेंड़ों पर किसान अपनी पगड़ी सम्हालकर कंठ को संवारता है, लाजवन्ती मालविकाओं की वाणी में जादू उतर आता है और पगों में ठुमकन भर जाती है। यह हमारे जीवन में लोक संगीत के द्वारा ही संभव माना जाता है।

लोक संगीत प्रकृति की एक देन है, जो मानव के लिए वरदान है। प्रकृति के समस्त घटकों यथा सूर्य, चन्द्र, आकाश, पृथ्वी, नदी, पहाड़, सागर, खेत–खलिहान, वर्षा, गर्मी, ठंड, पेड़–पौधे, पशु–पक्षी, प्राणी, हवा, प्रकाश इत्यादि के दर्शन लोक संगीत में सहज हैं। संसार के प्राणियों में मानव ही एक ऐसा है, जिसका मस्तिष्क प्रारंभ से ही विकासशील रहा है। उसकी जिज्ञासा सदैव बलवती रही है। आदि मानव ने प्रकृति की गोद में रहते हुए उसके अनेक सांस्कृतिक एवं प्राकृतिक रूपों का निकट से अवलोकन किया। शनैः शनैः उसने उन रूपों के क्रिया–कलापों तथा गतिविधियों से सुर, ताल एवं लय की अनुभूति की। आदि–मानव को यह अनुभूति अत्यंत सुखद प्रतीत हुई तथा इससे उसे आत्म मनोरंजन के साधन प्राप्त हुए।

वास्तव में लोक संगीत अज्ञात रचनाकारों की शास्त्रविहीन वह कृति है, जिसमें जन–मानस के सहज एवं सरल मनोभावों की साधारण संगीतात्मक तथा मौखिक अभिव्यक्ति है। यह वह स्वाभाविक अभिव्यंजना है, जो किसी सिद्धान्तपरक शैली से भिन्न होकर लोक संगीत एवं शास्त्रीय संगीत में अंतर निर्मित करती है। यह मान्य होना चाहिए कि सृष्टि में सर्वप्रथम संगीत की ही उत्पत्ति हुई है, किंतु कालांतर में कुछ स्वरों एवं तालों को लेकर जब जिज्ञासु संगीत मर्मज्ञों ने स्थिति, काल आदि के अनुसार विचार कर विशेष रचनाएँ तैयार कीं, तत्पश्चात् इस बात पर जोर दिया गया कि तैयार की गई रचनाएँ निर्धारित नियमों आदि के अनुसार ही अभिव्यक्त हों, तब आदिकाल से संगीत की अभिव्यक्ति में किसी प्रकार का बन्धन स्वीकार न करने वाले लोक मानस ने इसे स्वीकार नहीं किया। वह अपनी स्वाभाविक, पारंपरिक एवं बन्धनमुक्त धरोहर को ही विकसित करता रहा। फ्रायड के मतानुसार – "संगीत की उत्पत्ति एक शिशु के समान मनोवैज्ञानिक आधार पर हुई है। जिस प्रकार बालक रोना, चिल्लाना, हँसना आदि क्रियाएँ आवश्यकतानुसार स्वयं सीख लेता है, उसी प्रकार संगीत का प्रादुर्भाव मनोविज्ञान के आधार पर हुआ है। तदनुसार सृष्टि का शनैः शनैः विकास एवं परिमार्जन का एक प्रतिफल संगीत का वर्गीकरण प्रतीत होता है। कालान्तर में नियमबद्ध संगीत के ज्ञाता अपने संगीत को शास्त्रीय संगीत कहने लगे तथा जन जन का बंधन मुक्त संगीत, लोक संगीत कहा जाने लगा। इस प्रकार यह लोक संगीत मालवांचल के जन जन में व्याप्त होता गया और मालवी लोक संगीत की परंपरा कायम हो गई। लोक संगीत को मूल रूप से तीन वर्गों में विभाजित किया गया है जो इस प्रकार है –**1. लोक गीत 2. लोक वाद्य 3. लोक नृत्य**

इन तीनों विधाओं से मिल कर ही लोक संगीत की उत्पत्ति मानी जाती है। जिस प्रकार संगीत का आशय गायन वादन एवं नृत्य से है, उसी श्रृंखला में लोक संगीत में भी तीनों विधायें यथावत विद्यमान हैं।

1. लोक गीत– लोक गीत मानव की आदिम आत्माभिव्यक्ति है। अनादिकाल से मानव अपने विभिन्न प्रकार की मनोवृत्ति को प्रकट करने के लिए किसी न किसी रूप में संगीत से जुड़ा है वो चाहे लोक गीत हो या लोक वाद्य या लोक नृत्य। "लोक गीतों में मानव हृदय के सामूहिक भाव आशा–निराशा, आकर्षण–विकर्षण, शोक–उत्साह आदि भावनात्मक मनोदशाओं की सांगोपांग अभिव्यक्ति होती है।"

लोकगीत के लिये अंग्रेजी पर्याय शब्द है Folk - Song

* प्राध्यापक, संगीत विभाग, शा. कालिदास कन्या महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र)

यह जर्मन भाषा के VOLK SLIED का अपभ्रंश रूप है। समष्टिगत रूप में अखिल मानव समाज के मध्य चेतन–अचेतन स्तर जो भावनाएँ अथवा अनुभूतियाँ गेय शक्ल में व्यंजित होती हैं उन्हें 'लोकगीत' की संज्ञा दी जाती सकती है। यह एक ऐसा साहित्य है जो अलिखित रूप में पीढ़ी–दर–पीढ़ी मानव कंठों में निवास करता हुआ एक शाश्वत परंपरा के रूप में अपनी सुदीर्घ यात्रा तय करता है। लोकगीतों में विज्ञान की तराश नहीं, मानव संस्कृति का सारल्य और भावों का व्यापक उभार है। "प्राकृतिक संगीत ही लोक गीतों की परिभाषा है। मानव जब असभ्य था तब वह अपने उद्‌गारों को प्रकट करने के लिये वाणी द्वारा कुछ अस्पष्ट शब्दों का उच्चारण करता था। उस समय वही वाणी उसका संगीत और वही अस्पष्ट शब्द अथवा ध्वनि युक्त स्फुरण उसकी कविता होती थी।"[11]

विद्वानो के मतों के अनुसार निम्नलिखित रूप में लोक गीत की व्याख्या की गई है –

महात्मा गांधी–'लोक गीत समूची संस्कृति के पहरेदार हैं।'

कुमार गंधर्व–'लोक गीतों का निर्माण स्वाभाविक है।'

ए.एच. क्रेपी–'लोक गीत वह संपूर्ण गेय गीत है, जिसकी रचना प्राचीन अनपढ़ जन में अज्ञात रूप से हुई हो और जो यथेष्ट समय अर्थात् शताब्दियों तक प्रचलन में रहा हो।'

रामनरेश त्रिपाठी–'लोक गीत ह्रदय का धन है, महाकाव्य मस्तिष्क का। लोक गीतों में रस है, महाकाव्य में अलंकार। रस स्वाभाविक है और अलंकार मनुष्य निर्मित।'

एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका–'आदिकालीन स्वतः स्फूर्त संगीत को लोक गीत कहा गया है।'

हजारी प्रसाद द्विवेदी–'लोक गीतों की जन्मभूमि लोक मानस है। लोक मानस भी गीतों को जन्म देते समय उन्हीं भावों से स्पंदित तथा आंदालित हुआ है जिसमें कालिदास और भवभूति प्रभावित हुए थे।'

लोक गीतों की विशेषताएँ–1. लोक गीत, लोक रूपी धरा के कण–कण से उपजते एवं पनपते हैं। 2. लोक गीत जन–जन में पाए जाते हैं। 3. लोक गीत समूह एवं एकल, दोनों तरह से गाए जाते हैं, किंतु अधिकांशतः सामूहिक गाए जाते हैं। 4. लोक गीतों में बाल, वृद्ध, स्त्री–पुरूष सभी की गहरा रूचि होती है। 5. लोक गीतों की प्रकृति बन्धनमुक्त होती है। शास्त्र की किसी भी प्रकार की परिधि से लोक गीतों को परहेज होता है। 6. लोक गीत उन्मुक्त एवं स्वच्छन्द होते हैं। 7. लोक गीत गायन के लिए कोई निर्धारित समय, स्थान आदि की आवश्यकता नहीं होती है। जब भी मन में उमंग उठती है, लोक गीत के बोल मुँह से फूट पड़ते हैं। 8. लोक गीतों की रचना मानव के इर्द–गिर्द दैनिक जीवन से जुड़ी घटनाओं, आवश्यकताओं आदि विषयों से संबंधित होती हैं, जो सादी एवं सरल होती है। 9. लोक गीतों की धुनें सुगम एवं स्वर सीमित होती हैं। 10. लोक गीत साज की प्रतीक्षा नहीं करते हैं, किंतु लोक वाद्य लोक गीतों में प्राण फूँक देते हैं। 11. प्रकृति के दर्शन लोक गीतों के भावों में सन्निहित होते हैं। 12. लोक गीत जन–जन के चहेते, लाड़ले होते हैं। 13. लोक गीत स्वादिष्ट फूल और शीतल जल के समान सुख देने वाले होते हैं। 14. लोक गीत मौखिक एवं वाचिक परंपरा से पीढ़ी–दर–पीढ़ी हस्तगत होते रहते हैं। 15. लोक गीत किसी व्यक्ति विशेष की संपत्ति नहीं होते हैं। 16. लोक गीतों में हाँक एवं टेर होती है। 17. लोक गीत बोधगम्य एवं ललित साहित्य युक्त होते हैं। 18. लोक गीत संस्कार एवं परंपरा के वाहक होते हैं। 19. लोक गीतों में बारहमासी सुगंध होती है। 20. लोक गीतों में अद्वितीय दर्शन एवं मनोविज्ञान की गूढ़ता पाई जाती है। 21. लोक गीत, लोक चेतना के संवाहक होते हैं। 22. लोक गीत प्रत्येक रस में गाए जाते हैं, किंतु श्रंगार रस में गाये जाने वाले लोक गीतों की छटा निराली होती है। लोकगीतों में शब्द एवं भाव–सौंदर्य की अपेक्षा कण्ठ से निकलने वाली भाव–ध्वनियों का विशेष महत्त्व है। लोकगीतों की मौखिक परंपरा में जिन गीतों का अस्तित्व आज विद्यमान है उसका कारण है श्रवण–संचिर स्वर–लहरियों का आकर्षण। जिन गीतों की गायन शैली अधिक सरल एवं मधुर होती है उनका प्रभाव जन–मानस पर निरंतर बना रहता है। संवदेनशील मानव–ह्रदय के भाव सहजतः जब मुख से अभिव्यंजित होते हैं, स्वर एवं लयबद्ध हो जाने के पश्चात् एक निश्चित 'धुन' ..... गेय पद्धति में प्रकट होते हैं। इन लोक–धुनों की संख्या अनंत है। भारत के प्रत्येक जनपद में जितने भी लोकप्रिय लोकगीत प्रचलित हैं उनकी विशेष धुन हैं। ये लोकधुनें निसर्ग–सिद्ध हैं। इन्हीं लोकधुनों में भारतीय संगीत के अनेक राग छिपे हुए हैं। शास्त्रीय संगीत एवं विभिन्न राग–रागनियों का विकास लोक–धुनों में व्याप्त स्वरों पर आधारित है। मालवी एवं राजस्थानी लोकधुनों को लेकर शास्त्रीय संगीत के क्रमिक विकास का अध्ययन करने में कुमार गन्धर्व ने विशेष प्रयास किया है। उनकी खोज के आधार पर अब यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि शास्त्रीय संगीत का विकास लोकधुनों में व्याप्त है। लोकधुनों में शास्त्रीय संगीत का ज्ञान होता है। कुछ नई धुनें ऐसी भी हैं जिनके द्वारा नवीन रागों का निर्माण किया जा सकता है। लोकधुनों में से राग के मूल स्वरों को लेकर राग–रागनियों का निर्माण कर प्रदेश एवं जनपद विशेष की गान–पद्धति पर इसका नामकरण करना भी इस बात को सिद्ध करता है कि शास्त्रीय संगीत का आधार लोक–संगीत ही है। आधुनिक समय में प्रचलित राग–रागनियों में सोरठ, गान्धारी, भोपाली, मुल्तानी, बंग–भैरवी एवं गौड़–सारंग आदि जनपदीय लोकधुनों का प्रतिनिधित्व करते हैं। कुमार गन्धर्व ने लोकधुनों की निम्नलिखित विशेषताएँ बतलाई हैं–1. चार पांच स्वरों में सीमित (साधारणतः) 2. लयबद्धता 3. लय के अनेक प्रकार इन धुनों में प्राप्त होते हैं 4. लोक–धुन के स्वर समय के अनुरूप होते हैं 5. सरलता 6. धुन–रचना प्रसंगानुकूल होती है 7. एक धुन में अनेक गीत गाये जा सकते हैं। इस प्रकार मालवी लोक संगीत में लोकगीतों को आनंदपूर्वक गाया जाता है।

सन्दर्भ– 1. साक्षात्कार, 2. आकाशवाणी दूरदर्शन प्रसारण 3. मालवी लोकगीत एक विवेचनात्मक अध्ययन – डॉ. चिंतामणि उपाध्याय 4. पत्र पत्रिकाओं के माध्यम से 5. फील्ड वर्क द्वारा, 6. मालवा के लोकगीत –डॉ. शिवकुमार मधुर, 7.मालवी लोकगीत–डॉ. श्याम परमार, 8. मालवी एवं उसका साहित्य–डॉ. श्याम परमार, 9. लोकगीतों का क्रमिक विकास–डॉ. लालमणि मिश्र